लाल बहादुर शास्त्री

लाल बहादुर शास्त्री का जब भी प्रसंग आता है, अनेक चित्र मस्तिष्क में घूमने लगते हैं। ऊपर से कोमल पर अंदर से दृढ़ चट्टान, छोटा कद पर विशाल हृदय, सबको स्नेह और आदर देने वाले शास्त्रीजी जब अपनी प्रसिद्धि के चरम उत्कर्ष पर पहुंचे, यानी कि प्रधानमंत्री बने और बच्चे-बच्चे की जिह्वा पर उनका नाम आया तो मानो नियति को भी हमसे ईर्ष्या होने लगी और उसने उन्हें 11 जनवरी, 1966 को हमसे छीन लिया। लोगों की आंखों से अश्रुधारा बह निकली और बिलखते हुए सबने कहा, ''भारत का लाल चला गया।''

मेरे जैसे व्यक्ति पर उनकी असीम कृपा थी। यद्यपि उनके संस्मरण वैयक्तिक थाती के रूप में सुरक्षित रखने चाहिए किंतु उनका उल्लेख निश्चय ही उस देवात्मा के पवित्र जीवन को जन-जन तक पहुंचाने में सहायक होगा।

बात उस समय की है, जब अंग्रेज़ी को सह-राजभाषा बनाना आवश्यक हो गया था। इसके लिए संविधान में संशोधन होना था और संशोधन के लिए एक प्रस्ताव रखने का उत्तरदायित्व भारत के गृह मंत्री होने के नाते शास्त्रीजी पर ही था। इस बात को लेकर समस्त हिंदी जगत में बड़ी तीव्र प्रतिक्रिया थी। स्थान-स्थान पर आलोचना भी हो रही थी। एक दिन जब मैं उनसे मिलने गया, तब इधर-उधर की बातों के साथ यह विषय भी उठा। मैंने कहा कि हिंदी जगत यह सहन नहीं करेगा। तब वह बड़े शांत और गंभीर स्वर में बोले :

''अक्षयजी, यह तो आप जानते ही है कि भगवान शंकर को देव और असुर— दोनों के कल्याण के लिए ज़हर पीना पड़ा था। यदि वे न पीते, तो असुरों के साथ-साथ देवता भी जल-भुन जाते। मैं जानता हूं कि हिंदी प्रदेश का होने के कारण हिंदी वाले मेरे इस कार्य को कतई पसंद नहीं करेंगे। मैं स्वयं हिंदी

भक्त हूं, हिंदी के लिए काम किया है, हिंदी की उन्नति चाहता हूं किंतु यदि इस समय देश को एक सूत्र में पिरोकर रखना है तो मुझे यह हलाहल पीना ही पड़ेगा। मुझे हिंदी से बेहद स्नेह है किंतु देश की एकता सबसे अधिक प्रिय है। यह देश खंड-खंड न हो, इसी के लिए यह विधेयक प्रस्तुत करने की जिम्मेदारी मैंने अपने ऊपर ली है।''

शास्त्रीजी की यह बात सुनकर मैं कुछ क्षण के लिए अवाक् रह गया था। मैंने अनुभव किया कि शास्त्रीजी के हृदय में कितनी वेदना है और कितना बड़ा अपयश ओढ़कर भी वह देश की एकता को सुरक्षित रखना चाहते हैं।

वह कठिनाइयों में पले और बड़े हुए थे। शैशव में ही उनके अध्यापक पिता का शरीरांत हो गया और पिता के वात्सल्य को प्रत्यक्ष अनुभव न कर पाए। लालन-पालन नाना के घर हुआ। जब किशोर बने और शिक्षा ग्रहण कर रहे थे, तभी राष्ट्रपिता महात्मा गांधी राष्ट्रीय पहल पर आए। आज़ादी का बिगुल बजा। विदेशी शिक्षा-प्रणाली का बहिष्कार हुआ, तो छात्र लालबहादुर की आत्मा भी आज़ादी के लिए तड़प उठी। उन्होंने स्कूल छोड़ दिया और आज़ादी की लड़ाई में शामिल हो गए। जेल गए, छूटे, तब फिर अध्ययनरत हुए और राष्ट्रीय विद्यापीठ में दर्शनशास्त्र के शास्त्री बने। भले ही उन्होंने यह पदवी अपने नाम के साथ लगानी छोड़ दी थी लेकिन देश-विदेश में वह शास्त्रीजी के नाम से ही पहचाने जाने लगे।

प्रयाग में रहकर कांग्रेस का कार्य करते समय उन्हें महामना मदनमोहन मालवीय, राजर्षि पुरुषोत्तम दास टंडन और पं. जवाहरलाल नेहरू जैसे महान नेताओं का सान्निध्य प्राप्त हुआ। वह साधारण कार्यकर्ता से नेता बने और कुछ ही समय बाद उनकी कीर्ति प्रयाग की चहारदीवारी में बंधकर न रह सकी। वह प्रदेश में पहुंची। उत्तर प्रदेश के सभा सचिव और गृह मंत्री के पद पर रहकर उन्होंने क्षमता का जो मापदंड स्थापित किया, उसने उनके यश को द्विगुणित कर दिया। परिणाम यह निकला कि उत्तर प्रदेश भी उनके कार्य क्षेत्र के लिए छोटा पड़ गया। 1952 के प्रथम आम चुनाव के अवसर पर कांग्रेस के तीन हज़ार प्रत्याशियों का चयन उस निर्बल शरीर, किंतु सबल मस्तिष्क और संकल्प वाले

व्यक्ति ने जिस खूबी से किया, उससे लोग चकित रह गए। जवाहरलालजी को उनकी कार्यकुशलता पर भरोसा हुआ और फिर उन्होंने उन्हें अपने मंत्रिमंडल में शामिल कर लिया।

भारत सरकार के योग्यतम मंत्रियों में उनकी गिनती थी। वह अन्याय और तुष्टिकरण दोनों से दूर रहे। जब वह रेल मंत्री थे, तभी दक्षिण भारत के अरियालूर नामक स्थान पर एक दुर्घटना हो गई। शास्त्रीजी को इससे मर्मांतक पीड़ा हुई और विरोधी दल की ओर से त्यागपत्र मांगे बिना ही उन्होंने रेल मंत्री पद से त्यागपत्र दे दिया।

इस घटना के बाद जब मैं उनसे मिला और कहा कि आपने ऐसा क्यों किया? तब वह बोले, "ठीक है, दुर्घटना से मेरा सीधा ताल्लुक नहीं है किंतु संवैधानिक रूप से तो जिम्मेदार हूं।" मुझे याद है कि कुछ साथियों ने उन्हें ऐसा न करने का परामर्श ही नहीं अनुरोध भी किया था किंतु वह अपने निश्चय से टस-से-मस न हुए। उन्होंने यही कहा कि मेरा त्यागपत्र अधिकारियों को दंड देने की अपेक्षा अधिक प्रभावशाली सिद्ध होगा।

रेल मंत्री का पद छोड़ने पर भी वह शांति से न बैठ पाए। उन पर कांग्रेस संगठन का भार सौंपा गया और उन्होंने पूरी योग्यता के साथ उस काम को अंजाम दिया। वह अधिक दिन सरकार से बाहर न रह सके। जब नेहरूजी ने अपने मंत्रिमंडल का गठन किया तो शास्त्रीजी को पुन: उसमें शामिल कर लिया और जब पं. गोविंद बल्लभ पंत के निधन के बाद स्वराष्ट्र मंत्री का पद रिक्त हुआ, तब शास्त्रीजी स्वराष्ट्र मंत्री बनाए गए।

स्वराष्ट्र मंत्री के पद पर रहते हुए उनका व्यक्तित्व और भी निखरा और वह दिन-प्रतिदिन जनप्रिय होते गए। नेपाल और भारत के संबंधों को मधुर बनाने में उनका हाथ रहा। इसी प्रकार जब हज़रत मुहम्मद साहब के पवित्र बाल की चोरी को लेकर कश्मीर में दुखद स्थिति उत्पन्न हुई और शांत वातावरण अशांति में बदलता जा रहा था, पं. जवाहरलाल नेहरू ने शास्त्रीजी को कश्मीर भेजा और सच्चाई यह है कि उन्होंने बड़ी ही योग्यता से स्थिति पर नियंत्रण कर लिया। न केवल बाल मिल गया, बल्कि जो कटुता, भय एवं संदेह का वातावरण कश्मीर घाटी में छा गया था, वह भी दूर हो गया।

सन् 1962 में कामराज योजना के अंतर्गत शास्त्रीजी ने पुन: त्यागपत्र दे दिया और कांग्रेस संगठन का कार्य करने की ज़िम्मेदारी ली। कुछ ही मास बीते थे कि नेहरूजी ने उन्हें पुन: अपने मंत्रिमंडल में ले लिया और तब बिना विभाग के मंत्री बने। वास्तव में निर्बल स्वास्थ्य के कारण पंडितजी अपनी कुछ जिम्मेदारी उन पर डालना चाहते थे।

जनता में उनसे संबंधित किसी प्रश्न को लेकर जब कोई आलोचना होती तो वह बड़ी गंभीरता से उस पर विचार करते। कुछ मंत्रियों के बिजली के बिलों की अधिकता को लेकर लोकसभा में छींटाकशी हुई। शास्त्रीजी का नाम भी उसमें था। इस बात से वह बड़े दुखी हुए और उन्होंने तत्काल यह कहा कि बिल में जितना पैसा अधिक हो, वह मेरे वेतन में से काट लिया जाए।

किसी काम के सिलसिले में मैं उन दिनों उनके पास गया। विभिन्न विषयों पर बातचीत के दौरान बिजली-बिल संबंधी आलोचना पर भी चर्चा हो निकली। मैंने कहा कि शास्त्रीजी, भारत की जनता आप में गांधीजी के गुणों का सम्मिश्रण देखती है। वह यह भी जानती है कि आप जनता से उठकर आए हैं और उसे क्या प्राप्त है, इसे आप भली प्रकार जानते हैं। ऐसी स्थिति में जब आपका ही बिजली का बिल अधिक हो तो उसे दुख होता है। शास्त्रीजी बोले, "भाई, बात तो ठीक है, बिजली का बिल ज़्यादा नहीं आना चाहिए पर करूं क्या, मेरे बहुत-से मित्र आ जाते हैं और मेरे यहां ही ठहरने का आग्रह करते हैं। मैं यह भी नहीं कह सकता कि यहां स्थान कम है, कहीं और ठहरने का प्रबंध कर लो। ऐसा कहना बेरुख़ी तो होगा ही, अपनी सभ्यता के विरुद्ध भी है। और जब मैं देखता हूं कि ऐसे लोगों की संख्या अधिक है, जो बहुत संपन्न नहीं है तो उनसे ऐसा कहने का साहस ही नहीं होता कि किसी होटल में ठहर जाइए। ऐसा कहने पर लोग मुंह पर भले ही न कहें किंतु पीठ पीछे यही कहेंगे कि मंत्री बन जाने के बाद मैं इंसान नहीं रहा। अतिथियों की संख्या बढ़ने के कारण मुझे लान में भी टेंटों की व्यवस्था करनी पड़ती है और फिर स्वाभाविक ही है कि बिजली भी अधिक खर्च होगी।"

"इस बार बिजली का बिल बढ़ने का एक और भी कारण हो गया। मेरे एक कर्मचारी ने आकर कहा, कि बाबूजी सर्दी बहुत हो रही है। छोटे बच्चे हैं। यदि आप कहें तो हीटर ले जाऊं। मैंने स्वीकृति दे दी और बाद में पता चला कि

वह महाशय उस पर रोटी आदि भी बनाते रहे। अब आप ही बताइए कि यदि अपने कर्मचारी को सर्दी से बचने के लिए हीटर लगाने की स्वीकृति न देता तो वह क्या कुछ कहता और यदि कहीं से यह ख़बर अख़बार वालों तक पहुंच जाती, तो आप लोग भी मुझे हृदयहीन आदि न जाने किन-किन शब्दों से संबोधित करते।''

शास्त्रीजी की बात में दम था और मुझे लगा कि शास्त्रीजी का सर्वप्रिय होना उनकी आलोचना का कारण बना क्योंकि यह बात किसी से छिपी नहीं थी कि शास्त्रीजी कितनी सादगी से जीवन बिताते हैं। सालों मंत्री रहे किंतु अपनी निजी कार न रख सके। उनके बच्चे दिल्ली परिवहन की बस में ही स्कूल आते-जाते रहे और प्रधानमंत्री निवास का वाहन उन्होंने प्रयोग नहीं किया।

पंडित नेहरू के मई में देहावसान के बाद शास्त्रीजी जून 1964 में प्रधानमंत्री बने। देश की समस्याएं उनके सामने थीं, जिन्हें वह बड़ी बुद्धिमता के साथ हल कर रहे थे। सबसे मुख्य समस्या खाद्यान्न की थी। देश के कई भागों में सूखा पड़ जाने के कारण स्थिति और भी गंभीर हो चली थी। इस स्थिति पर काबू पाने के लिए उन्होंने जहां विदेशों से अन्न मंगाया, वहीं देश के नागरिकों से भी अनुरोध किया हर सोमवार को एक समय व्रत रखें। इसके लिए उन्होंने स्वयं सोमवार की शाम को भोजन करना छोड़ दिया।

किसी काम के सिलसिले में जब मैं उनसे मिलने गया, तो मैंने उनसे अनुरोध किया कि निर्बल स्वास्थ्य के कारण उनका उपवास रखना देश के लिए हितकर न होगा, तो वह बोले, ''मैं देश की जनता को व्रत रखने के लिए कहूं और स्वयं न रखूं, यह कोई आदर्श स्थिति नहीं है। जब जनता को इस बात का पता चलेगा कि मैं तो दोनों समय भरपेट भोजन करता हूं तो वह मेरी बात पर अमल क्यों करेगी?''

जब कच्छ का समझौता हुआ, तब उनके विरुद्ध भारतीय जनमानस में गहरा क्षोभ था। लोग भारत सरकार और शास्त्रीजी की आलोचना कर रहे थे। अंतरराष्ट्रीय और आंतरिक स्थिति पर चर्चा के दौरान मैंने शास्त्रीजी से कहा कि पाकिस्तान भारतीय स्वतंत्रता पर आघात कर चुका है और उसकी सेनाएं पूरे सीमांत में फैली हुई हैं और आपने कच्छ के बारे में जो नीति अपनाई है उसे लोग आपकी बुज़दिली बता रहे हैं।

शास्त्रीजी कुछ देर तक शांत रहे, फिर बोले, ''ऐसी बात नहीं है। अफ़ज़ल ख़ां जब बड़े वेग से बढ़ रहा था, तब शिवाजी किले में घुस गए थे। चारों ओर यही प्रचार हो रहा था कि शिवाजी डर गए किंतु जो कुछ हुआ, उससे आप भली प्रकार अवगत हैं।''

''भारत अपनी ओर से ज़ल्दबाजी नहीं करना चाहता। यह ठीक है कि कच्छ के बारे में हमें अपनी कुछ भूमि देनी पड़ सकती है लेकिन जब हमने यह मान लिया कि अंतरराष्ट्रीय न्यायालय जो निर्णय देगा उसे हम मानेंगे, तब उसके सिवा और चारा ही क्या था लेकिन इसका यह अर्थ नहीं कि हम सदा अपनी भूमि देते रहेंगे। यदि फिर कभी सीमा-अतिक्रमण का प्रश्न उपस्थित होगा, तब भारत यह नहीं देखेगा कि विश्व के लोग उस बारे में क्या सोचेंगे। देश की आबरू रखने के लिए, अपनी सीमाओं की रक्षा के लिए, जो भी उचित तथा संभव होगा, किया जाएगा।''

उस समय मुझे यह बात कुछ विशेष प्रभावशाली न लगी किंतु अगस्त 1965 में पाकिस्तान द्वारा लाखों मुजाहिदों को कश्मीर में भेजने तथा घुसपैठियों द्वारा वहां उत्पात मचाने के बाद उन्होंने जो कदम उठाया और जो दृढ़ता दिखाई, तब मेरी समझ में आया कि उस दिन शिवाजी और अफ़ज़ल ख़ां का उदाहरण भविष्य का संकेत देता था। और यह तो जगजाहिर है कि जब पाकिस्तान ने बाकायदा हमला कर दिया, तब शास्त्रीजी ने पाकिस्तान को सबक सिखाने का ही निश्चय किया। फिर क्या था, भारतीय सेनाएं पाकिस्तानी फ़ौज को रौंदने लगीं। उन्होंने रामलीला मैदान में भाषण देते हुए कहा, ''पाकिस्तान के तानाशाह अय्यूब साहब सोचते हैं कि अमरीकी पेटन टैंक पर बैठकर वह बड़े आराम से लाल किले तक पहुंच जाएंगे, तब अगर हम टहलते-टहलते हुए लाहौर तक पहुंच गए तो वह बौखला क्यों उठे?'' उनके इस भाषण में अदम्य साहस तो झलकता ही था, उनके दृढ़ निश्चय और उचित समय पर उचित निर्णय करने की सूझ-बूझ का भी परिचायक था।

इसमें तनिक भी संदेह नहीं कि मौर्य सम्राट समुद्रगुप्त के बाद शास्त्रीजी ही वह महान व्यक्ति थे, जिनके कारण भारत की मान-मर्यादा फिर से स्थापित हुई। संसार चकित रह गया, वह संसार जो भारत को दुर्बल, कायर और अहिंसा का पुजारी मात्र मानता था, उसने देखा कि भारत अन्याय का प्रतिकार करने में पूरी

तरह सक्षम है। इतिहासकार यह लिखेंगे कि कद में छोटे होते हुए भी लाल बहादुर शास्त्री ने भारत की प्रतिष्ठा को हिमालय की भांति उन्नत किया। वह केवल 18 मास ही प्रधानमंत्री रहे किंतु इस थोड़े समय में ही महान कार्य कर गए। उनका दिया हुआ नारा, 'जय जवान जय किसान' भारतीय जनता के लिए उद्‌बोधक वाक्य बन गया।

पाकिस्तान की शक्ति जब क्षीण हो गई, तो उसने शांति का प्रस्ताव रखा और विजेता के रूप में शास्त्रीजी ने उसे स्वीकार कर लिया। पाकिस्तान के जिन क्षेत्रों पर भारतीय सेनाओं ने अधिकार कर लिया था, उन्हें पुन: पाकिस्तान को दे दिया गया। इस पर कुछ क्षेत्रों में आलोचना भी हुई किंतु शास्त्रीजी ने यही कहा कि भारत का आदर्श रहा है कि वह किसी की धरती पर अधिकार करना नहीं चाहता लेकिन वह यह भी पसंद नहीं करता कि कोई उसकी धरती की ओर आंख उठाए। इस प्रकार शास्त्रीजी युद्ध और शांति दोनों के विजेता और नेता बने।

शास्त्रीजी जब प्रधानमंत्री की हैसियत से लंदन से राष्ट्रमंडलीय प्रधानमंत्री सम्मेलन में भाग लेकर स्वदेश लौट रहे थे, तो मार्ग में कराची में उन्होंने पाकिस्तान के तत्कालीन सदर अय्यूब खां से भेंट की थी। उस समय शास्त्रीजी के छोटे कद को लक्ष्य कर सदर अय्यूब ने कहा था कि शास्त्रीजी आपसे बात करने के लिए मुझे नीचे झुकना पड़ता है (आई हेव टु लुक डाउन अपोन यू)। इस पर शास्त्रीजी ने हाज़िर जवाबी का परिचय दिया था। उन्होंने कहा था, ''जी हां, मैं सिर उठाकर बात करता हूं और आपको सिर झुकाना पड़ता है।''

मैंने इस घटना के बारे में जब उनसे पूछा, तो वह खिलखिलाकर हंस पड़े। बोले, ''बात कुछ ऐसी ही हुई थी। पर इसका कोई खास अर्थ नहीं है।'' पर सच्चाई यह है कि एक वर्ष बाद ही जब 1965 में पाकिस्तान ने कश्मीर पर हमला किया, तो सदर अय्यूब को ही नीचे सिर झुकाना पड़ा था।

यों लाल बहादुर शास्त्रीजी से परिचय पुराना था किंतु उनके निकट संपर्क में आने का अधिक अवसर उस समय मिला, जब वह दिल्ली आ गए थे और कांग्रेस संगठन के साथ-साथ रेल मंत्री, केंद्रीय गृह मंत्री और बाद में प्रधानमंत्री बने थे। शास्त्रीजी अत्यंत विनम्र और स्नेही थे। रेल मंत्री पद से जब उन्होंने

त्यागपत्र दिया, तब देश की जनता की निगाह में उनकी प्रतिष्ठा बहुत ऊंची हो गई। कहीं कोई रेल दुर्घटना हो जाए, तो इसमें रेल मंत्री का प्रत्यक्ष अथवा अप्रत्यक्ष कोई दोष नहीं होता। किंतु अपना नैतिक दायित्व मानते हुए शास्त्रीजी ने इतने बड़े पद का त्याग किया, यह एक आदर्श उदाहरण था।

गृह मंत्री के रूप में उन्होंने बहुत-से कार्य सफलतापूर्वक किए। किंतु अपने 18 मास के प्रधानमंत्री काल में पाकिस्तान के साथ दो-दो युद्धों में रत रहकर भी उन्होंने भारत का मस्तक ऊपर उठा दिया। 1962 के समय चीन के आक्रमण से भारत की छवि को जो क्षति पहुंची थी, उसका 1965 में उन्होंने परिहार कर दिया था।

अंत में उनके दो पत्रों का उल्लेख करना चाहूंगा। चीन के आक्रमण के समय वह केंद्रीय गृह मंत्री थे। तभी 1963 की गर्मियों में अर्ल बर्टंड रसल की एक पुस्तक *अनआर्म्ड विक्ट्री* पेंगुइन स्पेशल सीरीज़ में आई थी। वह पुस्तक मुझे भारत-विरोधी लगी, तो मैंने शास्त्रीजी को पत्र लिखा और उनका ध्यान पुस्तक के तीसरे परिच्छेद 'द साइनो इंडियन डिसप्यूट' की ओर दिलाया, उसमें चीन की मान्यताओं और कार्यों की प्रशंसा की गई थी। मैंने शास्त्रीजी को लिखा कि एक ओर जब हम अपने देश में चीन-समर्थक लेख आदि पर आपत्ति करके उनको चेतावनी देते हैं, तब हमारे प्रशासन को इस तरह की भारत-विरोधी और चीन-समर्थक पुस्तकों की तरफ ध्यान देना चाहिए। 22 अगस्त को शास्त्रीजी ने इसका उत्तर दिया -

''प्रिय अक्षय कुमारजी, नमस्कार!

आपका पत्र मिला। खेद है, इधर मैं आपसे भेंट नहीं कर सका। दो-तीन दिन के बाद आपसे मिलेंगे। बर्टंड रसल के संबंध में भी उस समय बात करेंगे।''

आपका

लाल बहादुर

और अगले ही दिन शास्त्रीजी ने बात करने के लिए बुला लिया। रसल की पुस्तक के संबंध में उन्होंने बताया कि उसकी थोड़ी-सी प्रतियां बाज़ार में आई हैं। अगर उसके विरुद्ध कोई कार्रवाई की गई तो निश्चय ही पुस्तक का

अवांछित प्रचार होगा और फिर लोग अन्य उपायों से उसे मंगवाकर पढ़ेंगे। दूसरे रसल साहब बहुत बड़े विद्वान हैं। उनकी पुस्तक पर हम पाबंदी लगा दें, यह उचित नहीं होगा। नेहरूजी शायद उसके लिए राजी न हों। और बात आई-गई हो गई।

मुझे उनका जो अंतिम पत्र मिला, वह इस प्रकार था :

प्रधानमंत्री भवन,

1 जनवरी, 1966

नमस्कार!

साप्ताहिक *प्रताप,* कानपुर में कुछ संघर्ष-सा पड़ गया है। क्या यह संभव नहीं है कि आप तथा कुछ मित्र सम्मिलित होकर उसे समाप्त करने का प्रयास करें?—लाल बहादुर।

इस पत्र ने अनेक पुरानी यादें ताज़ा कर दीं— शास्त्रीजी का स्वर्गीय गणेश शंकर विद्यार्थी तथा उनके पत्र *प्रताप* के प्रति स्नेह, *प्रताप* राष्ट्रीय पत्रकारिता की आदर्श परंपरा, कवि-राजनीतिज्ञ बालकृष्ण शर्मा नवीन का *प्रताप* के साथ संपर्क और विद्यार्थीजी के बलिदान के बाद से *प्रताप* की निरंतर गिरती हुई स्थिति और *प्रताप* के झगड़े के विकृत रूप। विद्यार्थीजी के प्रति समकालीन हिंदी पत्रकारों में बड़ी सम्मानपूर्ण भावना थी, उस कारण *प्रताप* का यह वर्षों से चलता हुआ झगड़ा एक प्रवाद बन गया था। हम सब दुखी थे किंतु चुप थे। जब देश के प्रधानमंत्री ने मुझे लिखा, तो मैं कुछ सक्रिय हुआ। पं. बनारसीदास चतुर्वेदी आदि सम्मान्य बुजुर्गों को पत्र लिखे और झगड़े से संबंधित व्यक्तियों से भी निवेदन किया, विद्यार्थीजी के नाम का वास्ता भी दिया किंतु परिणाम कुछ न निकला, सिवा इसके कि चतुर्वेदीजी और हम दोनों क्रोध के पात्र बने।

शास्त्रीजी प्रधानमंत्री की हैसियत से चाहते, तो ज़ोर देकर कुछ करा सकते थे किंतु समाचारपत्रों को स्वतंत्र रहना चाहिए इस सिद्धांत के वह पूरी तरह कायल थे। ताशकंद में उनके निधन से पहले लिखा उनका यह पत्र इस बात को प्रकट करता है कि प्रेस के प्रति उनका दृष्टिकोण कितना सुलझा हुआ और सहृदयतापूर्ण था।